"शिशु(जीव)सुरक्षा"

"निमाने कउ जो देतो मान । सगल भूखे कउ करता दान । गरभ घोर मह राखनहार । तिस ठाकुर कउ सदा नमस्कार ।" देखा जाये तो यह सारी सृष्टि इस एक का ही पसारा है उसी ने सब कुछ प्रकट कर सभी को एक सूत में पिरो रखा है ।

"काईआ अंदर ब्रह्मा बिशन महेशा सभ ओपति जितु संसारा । सचै आपणा खेल रचाइआ आवागउण पसारा ।" जो कुछ भी इस रचना में दृष्टिगोचर है इस सब का प्रतिबिम्ब इस पिण्ड में मौजूद

है । ब्राह्मण्ड का अण्ड (त्रिलोकि) में तथा अण्ड का इस पिण्ड में । काटने-छेदने से कुछ नहीं मिलता, ये सब खेल उस एक के हुकम (शब्द) पर आधारित है । "जो ब्रहमण्डे सोई पिण्डे जो खोजै सो पावै ।" (पीपा जी-695) केवल जिज्ञासु आत्मा ही खोज के विषय को अपनाती हैं और उसे ये खेल का असली स्वरूप दिखा कर के खेल से अलग कर लिया जाता है । कारण जान लेने के बाद कोई भी खेल का अंग बन ही नहीं सकता । जैसे नाटक में परदे के सामने हीरो-विलेन तथा शेष कहानी के पात्र अपने-अपने पार्ट के अनुसार अन्जान बन करके अपनी भूमिका को अच्छे से अच्छे ढंग से निभाते हैं जिसमें रोना पीटना, हसँना, नाचना-कूदना आदि शामिल होता है जिस से देखने वाले को अच्छा महसूस हो अर्थात उसका मनोरंजन हो "सच खंडि वसै निरंकारु । करि करि वेखै नदरि निहाल ।" इत्यादि भावों से यह सब स्पष्ट ही है । इस खेल में पात्र अपनी भूमिका निभाता है पर उसे असलियत का पता नहीं । यह गुप्त रखा गया है कारण खेल को रोचक बनाने के लिये । जब पर्दा गिरता है तो सब एक ही चक्की के बट्टे अपने आधार उसी चक्की में समा जाते हैं । उस चक्की (ईश) के सिवा और कुछ भी शेष रहता ही नहीं ! पर जब तक पर्दा नहीं गिरता तब तक रोना-पीटना, नाचना-कूदना आदि रंग तमाशा बना ही रहता है। जड़ में चेतन के प्रवेश से ही यह

रचना रोचक बनती है । वर्ना जड़ का अपना कुछ भी अर्थ ही नहीं । इसी जड़-चेतन के सम्बन्ध से बनी इस त्रिलोकि को दूसरे खिलाड़ी (विलेंन) के अधीन पूरी ताकत तथा नियम दे करके अधीन किया गया है । "खण्ड पाताल दीप सभि लोआ । सभि कालै वसि आपि प्रभि कीआ ।" (5-1076) इस दूसरे खिलाड़ी का भेद बहुत गहरा है यह ताकत में रूबरू असल खिलाड़ी (ईश) जैसा ही है । और इसका कार्य नियमों के अधीन हर हाल में चेतन को केवल अपने दायरे (त्रिलोकि) में केवल रोक रखना मात्र ही है। यही कार्य को सिद्ध करने के लिये जब असल एक चाल चलता है अर्थात (जड़-चेतन) का पुतला मनुष्य जब ईश को "राम" कहता है तो दूसरा खिलाड़ी जगत में एक चलता फिरता अपार सिद्धियों का स्वामी राम जी (दशरथ पुत्र) भेज कर असल से पुतले को विमुख कर देता है। "राम" का भाव तो उस "एक" के जड़ चेतन में रमे हुऐ होने के कारण ही केवल उसे याद किया गया। "जल थल महिअल पूरिआ स्वामी सिरजनहार । अनिक भांत होइ पसरिआ नानक "एकंकार" । (296) ऐसा दूसरा खिलाड़ी केवल भ्रम पैदा करने के लिये ही करता है ताकि चेतन का ख्याल असल ईश की ओर जाये ही नहीं । यानी विलेन का पूरा कार्य बहुत बखूबी निभाता है कि किसी भी कारण आत्मा असल तक न पहुँचे क्योंकि चेतन के निकलते ही जड़ भी तो कोई सत्ता ही नही

है । फिर रोचक कैसे हो ! आत्मा है तो ईश का ही अंश, ईश ही है "तत्वमसि" अर्थात तू वही है । "अहम ब्राह्मस्मि" मैं ही ब्रह्म हूँ । अपने स्वरूप को पहचान कर रूह उसी एक में समा जाती है । अर्थात खेल से अलग हो जाती है । जैसा फिल्मों में दिखाया जाता है विलेन का कार्य सिर्फ भ्रम बनाना और असल हीरो के अधिकारों का दुरूपयोग करना तथा उसके सभी कार्यों में विघ्न उत्पन्न करना । ताकि खूब रोना-पीटना, नाचना-कूदना आदि बना रहे जिससे देखने वालों को खेल रुचिकर हो । उनका मनोरंजन हो । बस रूबरू यही फिल्म यहां भी चल रही है । उसे विष्णु अर्थात सर्वव्यापक होने के कारण कहा जाता है तो एक चक्रधारी विष्णु जी प्रकट कर देता है । उनके हाथ में चक्र प्रत्यक्ष बता रहा है कि यह चक्र ८४ लाख जूनों का मेरे एक रोम तो क्या संकल्प से ही टिका हुआ घूम रहा है । चेतन भ्रम जाता है उससे आगे की उसे कल्पना ही नहीं रहती । आत्मा का कल्याणकारी होने के कारण उसे "शिव" कहा गया । अब यहां भी शिव को ही खड़ा कर दिया भस्म सहित "हर हर महादेव" सभी देवों के देव बना कर के । चेतन बेचारा इन की माया को ही नहीं जान सकता तो फिर उस एक की "त्रिगुणी" को किस कल्पना से जाने यानी कोई विषय ही नहीं रह जाता बाकी इसके कल्याण का ! ईश नाम (शब्द) ही है और कुछ भी नहीं । इस नाम (शब्द) में एक गुरुत्वाकर्षण

जैसा आकर्षण है जो केवल और केवल आत्मा को ही आकर्षित करता हैं इस खेल में ! वैसे तो सभी कुछ अलग जड़-चेतन केवल इसी शब्द (नाम) के आकर्षण पर ही टिके अर्थात व्यवहारित हैं। "सबदे धरती सबदे आकास । सबदे सबद भइआ परगास । सगली सृसटि सबद के पाछे । नानक सबद घटे घट आछे ।" (प्रकट से ले कर के विलय तक) इसके फैलने से रचना रचित हो दृश्टिगोचर होती है और सिमटने पर विलय हो जाती है । केवल अति सूक्ष्म अणु-परमाणु ही आदि शेष उसी में निहित हो जाते हैं । अब इस आकर्षण के कारण उसे "कृष्ण" कहा गया तो भाई जी एक सचमुच के "श्री कृष्ण जी" दृश्टिगोचर हुए । इनकी लीलायें भी कल्पना से बाहर की ही होती हैं जैसे एक अंगुली पर गोवर्धन पर्वत का सात दिनों तक उठाये रखना । बेचारा अन्धा जीव यह विचार करने की कल्पना ही नहीं करता कि इन अनन्त मण्डलों को किसने कितनें हाथों आदि साधनों से उठा रखा है "भै (शब्द) विचि सूरज भै विचि चंद । कोह करोड़ी चलत न अंत । भै विचि सिध बुध सुर नाथ । भै विचि आडाणे आकास । भै विचि जोध महाबल सूर । भै विचि आवहि जावहि पूर । सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेख । नानक निरभउ निरंकार सचु एक ।" और प्रकट "कृष्ण जी" को देख नाचने-कूदने लगता है । इस रंग तमाशे में कृष्ण का भाव आकर्षण और वह आकर्षण तेरे अन्दर रोम-रोम में बसा तुझे ले जाने के लिये इंतज़ार कर रहा है ?

कल्पना में भी नहीं करता और सारी समर्थता इस बाहर के रंग तमाशे में लुटा कर हारे हुए जुआरी की तरह पल्ला झाड़ कर रोता हुआ फिर जन्म लेने के लिये इस संसार से कूच कर जाता है।

अब नियम पर विचार करें। "नकल" केवल और केवल चेतन का मनुष्य जन्म में ही किये गये कार्यों का ही अनुसरण करता है। तीनों मण्डलों में अपना अंश (ताकत) देकर के विशेष-2 रूहों को अनुयायिओं सहित जाल के रूप में फैला रखा है जो मुखतौर पर मनुष्य जून की ही भरपूर निगरानी करती हैं और हर उठने वाली तरंग को पकड़ लिया जाता है। सिर्फ आप के मांगने भर की देरी है वो भी केवल ख्याल में ही और नोट कर ली जाती है आप को देने के लिये। लेने के लिये पिंजरा शरीर चाहिये यानी खुद ही जीव पिंजरे को बनाता है। शरीरों रहित आत्मा की परमात्मा जैसी ही समर्थता है वो खुद इन सभी पदार्थों को घड़ सकती हैं इसी एक शब्द के आधार पर। मालिक हैं, अंश हैं उस "एक" का, राज करने के लिये ही आयी थीं। दूसरे खिलाड़ी नें ऐसा भ्रम पैदा किया कि भूल बैठी। अपनी सत्ता ही भूल गई। मैं कौन हूँ, कहाँ से आई और क्या कार्य है मेरा यहाँ पर, इसे कुछ भी याद ही नहीं। उल्टा बन्धन (शरीर रूपी पिंजरों) में पड़ी सिसक रही है। खुद आनंद स्वरूप और तरस रही है सुख के लिये। भटक रही है दर दर ठोकरें खा रही है उस संतोष के लिये जिसका मूल

वह खुद स्वंय है । जब जड़ से चेतन अलग हो जाता है तो इस जड़ के मुँह में मीठा रख कर उस से स्वाद पूछो ? क्या जड़ में भी कोई स्वाद होता है ? इससे सिद्ध है कि यह स्वंय ही चेतन स्वाद अर्थात आनंद ही है । शेष सभी जूनें मनुष्य जून में किये गये कार्यो का केवल भुगतान (प्रतिफल) मात्र ही हैं । यहां कुछ भी मुफ्त में नहीं मिलता । हर एक कामना का भुगतान अनन्त कल्पों के बाद भी देना ही केवल छुटकारे का उपाय मात्र है । ताज्जुब है फिर भी आत्मा नये संकल्पों का कल्पना में भी ब्यान नहीं कर पाती सारी उम्र डब्बे के बिना ही भीख माँगती रहती हैं पिछली भीख का भुगतान हो नहीं पाता और आगे की फसल बीजती चली जाती हैं । इसी तरह अनन्त काल से अनन्त पापों (पाप अथवा पुण्य दोनों आत्मा के लिये तो केवल "पाप" ही है क्योंकि पुण्य में भी तो इसे बन्धन (शरीर रूपी पिंजरे) को धारण करना ही पड़ता है।) का बोझ इस आत्मा पर पड़ा हुआ है । जिसे इसे अभी भोगना (हिसाब देना) बाकी है । आप कह सकते हैं कि हम मांगते हैं तो हमें तो कुछ भी नहीं मिलता, कैसे माने आप ठीक कहते हैं, तो सुनें दो तिहाई तो प्रत्येक जन्म का हिस्सा पिछले जन्मों में खाये हुए आधार का निश्चित ही है । केवल एक चौथाई ही जीवन नये कार्य को करने के लिये बचता है वह भी जीव अंधेपन में दो तिहाई जिस रो (बहाव) में ले जाते हैं उसी में

बह जाता है । बचने का कोई उपाय ही नहीं करता । तो यदि एक चौथाई में मांग के अनुकूल वातावरण जीव पैदा करता है तो अवश्य इसी अवस्था में अन्यथा अगले जीवन काल में इच्छित कामना अवश्य पूरी होगी ! कोई परेशान होने की जरूरत नहीं । पर जीव तुरंत अपने सकंल्प को पूरा होते देखना चाहता है और दो तिहाई अधीन न होने के कारण नीच से नीच वृति को भी अपनाने में नहीं चूकता । यही उसके घोर दुखों का कारण बनता है । दो-तिहाई न एक तिल घटेगा न एक तिल बढ़ेगा ! जब जीव इधर उधर भागता-दौड़ता फरियादें करता है, रोता पीटता है क्योंकि करते वक्त आँख बंद कर लेता है "मनमुख दुख का खेत है दुख बीजे दुख खाई । दुखि विचि जमै दुखि मरै हउमै करत विहाई । आवण जाण न सुझई अंधा अंध कमाई । जो देवै तिसै न जाणई दिते को लपटाई । नानक पूरबि लिखिआ कमावणा अवर न करणा जाई ।" (1379) जैसे चिल्लाने वाले मरीज का फोड़ा डॉक्टर काटना बंद कर मलहम लगा कर पट्टी कर देता है । वैसे ही चालाक रूहों का हाल होता है । उसी फोड़े का जहर फिर एक दिन उसी के पूरे अंग को ही भंग करने का कारण बनता है । वैसे ही जो रूहें हिसाब देने में सिआणतों का प्रयोग करती हैं सिफारिशों की तो कोई कल्पना भी नहीं है । अपने अगले जन्मों (पिजरों) को ही केवल पक्का करती हैं कारण मवाद का बढ़ना और फिर अंग-भंग अर्थात अपनी जी हजूरी (महंतों की) आदि

सिफारिशों से इस वक्त अपनी आँख बंद करके की गई करतूतों के भुगतान को देने से इन्कार करके अगले जन्मों में कई गुना अधिक हिसाब चुकाती हैं । जैसे फोड़ा काट मवाद न निकाली जाये तो जहर बढ़ता जाता है वैसे ही समय पर कर्म के भुगतान को न चुकाने से इस का भी प्रतिफल (विश) बढ़ता ही जाता है । बताइये ये कहाँ की अक्लमंदी है । महंतों को अपने स्वार्थों, मान-आदर इत्यादि के सिवा ओर फुर्सत ही कहाँ है, वैसे कोई एक आध केस केवल अपने प्रभुत्व के ही बनाये रखने के लिये निस्वार्थ भाव से अपनी देह पर भुगतवा कर दुनिया में अपना सिक्का चलाये रहते हैं । इस बारे में तो कहाँ तक बताया जाये, केवल इतना ही जान लें कि यह एक ऐसा अंधा कुआँ है जिसमे घुसने का मार्ग तो बहुत रोशन है पर उससे वापिस निकलने का तो कोई मार्ग ही नहीं है । बुद्धिमानी का फैसला तो केवल यही है कि सम्पूर्ण कामनाओं (लोक-परलोक) का निस्वार्थ भाव से पूर्णतया त्याग किया जाये तथा शेष भुगतान खामोशी से केवल उस एक ईश के आगे गिड़गिड़ा कर दिया जाये । निरन्तर (शुद्ध हृदय) से दीन हीन हो उसी की शरण तथा चिन्तन ही बस केवल भवसागर के पार होने का उपाय है । "सर्वधर्मान परित्यज्य मोमकं शरणम् ब्रज ।" वर्ना जन्म लेने से तो कोई रूक ही न पायेगा और फिर मृत्यु तो अपने आप ही निश्चित हो गई क्योंकि मौत तो पहले

लिखी जाती है । केवल जन्म ही देखने में पहले लगता है । और ये सिलसिला अनन्त काल से चला आ रहा है और आगे भी इसी तरह से ही चलता रहेगा । "जो उपजयो सो बिनस है परअयों आज के काल ।" एक जन्म का दुख तो ब्यान होता नहीं, अनन्त के को कौन किन शब्दों में ब्यान कर सकता है अर्थात दुखों का तो कोई अन्त ही नहीं होगा । अरे, रोने की आवाज़ आ रही है शायद कोई जीव फिर से दुखी होने इस दुखालय में प्रवेश कर रहा है । संसार दुखों का घर ही केवल है । जैसे पुस्तकालय में केवल पुस्तकें ही मिलती हैं वैसे ही संसार में सुख की आस करना केवल मूर्खता ही साबित होगी, कारण दुखालय में "दुख" के सिवा कुछ भी आस करना मृगन्मरीचिका ही है। कोशिश कर देखते हैं शायद कुछ दुखों से राहत मिल सके इस रोते हुऐ जीव को । "लेखा मेटि न सकिये जो धुरि लिखिआ करतार ।" कुछ उपाय बताना तो केवल ऐसा ही है जैसे "पड़ि पंडित अवरा समझाए घर जलते की खबरि न पाए ।" (3-1046) भाई यहाँ तो सभी काल की चक्की में पिसे जा रहे हैं अर्थात सभी दुखी ही "केवल" हैं ।

जैसे ऊपर बता आये हैं गर्भ में आते ही जीव की रक्षा केवल "ठाकुर" (शब्द) ही करता है पर केवल कर्म-प्रतिफल अनुसार ही । यह हर समय ध्यान में रखने योग्य है । केवल एक चौथाई ही उपाय यदि विलक्षण अर्थात "ईश" पर ही आधारित हो तो "दया"

प्राप्त हो सकती है । माँ को केवल पति की "ईमानदारी" की कृत और केवल "ईश" चिंतन पर ही निर्भर रहना वांच्छनीय है । आने वाले जीव के कल्याण के लिये यही नींव केवल उपयोगी है । (गर्भ में जीव के आते ही "औषधि तथा पथ" दोनों ही माँ -शिशु के लिये निरन्तर उपयोगी सुरक्षित आहार अथवा आधार है)। केवल भक्षय पदार्थों का ही सेवन हितकर है-हर कीमत पर (मांस-मद, दान पदार्थ-कपट-बेईमानी की कृत से प्राप्त भोज्य पदार्थ इत्यादि) इन सभी का पूर्ण तौर पर सख्ती से "निषेध" है ।

विशेष चेतावनी :- सभी प्रकार के उपाय जीव से सम्बन्धित केवल और केवल सम्बन्धित माँ-बाप अथवा विशेष आश्रित शुभ चिंतक के जरिये ही होने वांच्छनीय हैं । महंतों (दलालों) के जरिये तो केवल अपने हाथों जीव को विश देना मात्र ही है । कारण उन महंतों के रोम-रोम से लोभ रूपी विशैले परमाणु निकल-निकल कर सारे सम्बन्धित पदार्थों में व्याप्त होते रहते हैं उस वातावरण में "सुरक्षा" की कल्पना कैसे की जा सकती है । दूसरी ओर "मर्यादित" माँ-पिता से केवल और केवल "सुरक्षा" के ही परमाणु सम्बन्धित पदार्थों, उपायों में व्याप्त होगें और उनकी सुरक्षा का संकल्प अवश्य ही फलदायक सिद्ध होगा । शिशु के "जन्म" का किसी भी तरह का प्रचार नहीं करना ही वांच्छनीय है । (केवल नजदीकी परिवार सदस्य ही जान पायें) । डेढ़-दो महीने

कम से कम माँ-बच्चे को "विशेष गृह" से बाहर नहीं निकालना ही हितकर है। (विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर) इस दौरान खास तौर पर "माँ" केवल पति की ही ईमानदारी की कृत द्वारा प्राप्त पदार्थों का ही सेवन करे। किसी भी दूसरे गृह का पदार्थ पूर्णतया परितज्य है। "विशेष स्त्रियों" की दृश्टि से भी पूर्णतया परदा की हितकर साबित होगा। (दृश्टि दोष निवारण जानवरों विशेष कर "बिल्ली-कूकर" आदि से अति सावधान रहें।) केवल "माँ-पिता" ही "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी" की बाणियों का (ऊँची आवाज में) जीव के पास बैठ कर के पठन-मनन करें। (सुबह तथा खास तौर पर सूर्य डूबने के पश्चात अवश्य करना वांच्छनीय है)।

"मूल मन्त्र" को एक कागज पर केसर या/अथवा पीले रंग से लिख कर के बनाये यन्त्र को कपड़े में लपेट करके ढीला सा हाथ में बांध दें। कुछ बड़े होने पर उसी को ताबीज में मढ़वा कर गले में लटका दें। अथवा शुद्ध धातू के सिक्के पर मूल मन्त्र (एक ओंकार) चिन्हित ही "केवल" भी गले में लटका सकते हैं। कुछ और बड़े होने पर 10-12 साल की अवस्था पर तो यह मूल मन्त्र इस कण्ठ के अन्दर हृदय में "खुद" जाना चाहिये। यही केवल असली सुरक्षा है जीव की केवल अपने ही "पुरुषार्थ" (तथा ईश कृपा) द्वारा निश्चित रूप से। एक छोटी "तेग" (म्यान रहित) जीव के सिरहाने हमेशा तकिये के नीचे रहनी चाहिये। तथा एक

लोटा आदि बर्तन में पानी भरा हुआ भी सिरहाने पास में ही रहना वांच्छनीय है । सूर्य के डूबने पर ताजे जल से भरकर रख दें तथा वहीं बैठ करके बाणी का पठन (मर्यादित) अवश्य करना हितकर है । यह पानी कहीं प्रयोग में नहीं लाना गल्ती से भी, सुबह इस पानी को बाहर गेर (फेंक) देना है तथा बर्तन साफ करके फिर से शाम को भर कर रख देना है । (जितने भी पदार्थ तथा सूक्ष्म विकार (दैवी विघ्न) इत्यादि होंगे खंडित होकर जलमय हो जायेगें तथा इस जल को बाहर गेर (फेंक) देना है ।) (यह क्रिया केवल सकंल्प सिद्धि ही है जैसा संकल्प वैसी सिद्धि) (संकल्प केवल मर्यादित जीवन से ही सिद्ध होते हैं । जितनी मर्यादा उतनी सुरक्षा ।) डेढ़ दो महीने बाद नजदीकि गुरूद्वारे में प्रसाद की देग चढ़ायें । तथा जो हुकम (निर्देष आये) उसी अक्षर पर ही केवल जीव का "नामकरण" करें । इसी तरह से ही "दस्तार बन्दी" इत्यादि भी । नाचना-कूदना, रंग-तमाशा हितकर नहीं हो सकते । जीव के सारे संस्कार ही ऐसे वातावरण से बिगड़ने लगते हैं । जिस दिन जीव को बाहर निकालें, उस दिन से सावधानी अधिक बरतें । (खान-पान तथा विशेष नजर में) गरीबों के लिये प्रसाद (पूरी अथवा मिस्सी रोटी कड़ाह प्रसाद) बना कर अवश्य ही बांटे । अपने आश्रितों तथा सम्बन्धियों (बजुर्गो को खास तौर पर) को यथा सम्भंव पदार्थो से संतुष्ट करें । दायी को भी अवश्य संतुष्ट रखें ।

गरीबों के लिये भोजन आदि पदार्थ यथा सम्भव क्षमता अनुसार ही केवल कुछ-2 दिनों के अन्तराल से अवश्य ही करते रहें । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी का मर्यादा अनुसार अखण्ड पाठ केवल घर पर ही रखवा कर वाणी का पठन-मनन करें (स्वंय)। ऐसी क्षमता न होने पर स्वंय रोज वाणी का स्वाध्याय करें तथा विशेष दिन (कथा-कीर्तन) तथा लंगर करें । यह आप गुरूद्वारे में भी कर सकते हैं । (अखण्ड पाठ आदि के नाम पर गुरूद्वारे में किराये की भक्ति का पूर्णतया निषेध है)। (आज का सिक्ख-शादी ब्याह, बच्चे, सभा इत्यादि घर पर पूरे आदर सत्कार से होते हैं । भक्ति के लिये न समय है न स्थान, इस के भार को ढोने के लिये किराये के खोते (गधे) (दलाल) तथा स्थान चाहिये।)

विशेष शहीदी ऐतिहासिक स्थल पर जीव को ले जाकर परमात्मा से सुरक्षा की याचना करें । (प्रसाद इत्यादि (क्षमता अनुसार) चढ़ायें), स्नान करायें तथा जल पिलायें विशेष तौर पर । एक अथवा अधिक बार इसी क्रिया को दोहरायें "निष्कपट" भाव से । जितनी श्रद्धा यकीन तथा प्रेम आप का ईश्वर पर होगा उतना ही उत्तम प्रतिफल आप प्राप्त कर पायेंगे । यहीं से जल केनी (बोतल) इत्यादि में भर कर घर पर रखें तथा उसी में से मिला करके रोज जीव को स्नान करायें तथा पीने के लिये भी दें । विशेष दिनों को प्रसाद बना कर के (गरीबों में अन्न इत्यादि

पदार्थो का सदुपयोग करते रहें।) विशेष तौर पर सिद्धी का प्रयोग करने बारे सिद्ध गण (महंत इत्यादि) (1) तप (2) वरदान (3) अंश मर्यादा । एक अथवा अधिक का चरितार्थ स्वरूप होते हैं । जब ये अपने संकल्प को पूरा करने के लिये सिद्धि का प्रयोग करते हैं तो सिद्धि की गति केवल मैल (कर्म फल) पर ही आधारित होती है । जिस पर सिद्धि छोड़ी जाती है उस पर यह कितना-कितना प्रभाव डालेगी यह भी भुक्त भोगी के तप, वरदान तथा मर्यादा पर आधारित होती है । यदि जीव (भुक्त भोगी) इन तीनों से रहित है तो नाश पूर्ण तौर पर निश्चित ही जानियेगा । यदि तीनों में किसी एक का भी कुछ अथवा जितना भी प्रतिशत जीव नें प्राप्त किया हुआ है उतना ही रक्षित रहेगा शेष तो केवल और केवल नाश निश्चित ही है। अब अगर जीव पूर्ण प्रतिशत तप, वरदान तथा मर्यादा में से एक अथवा दो या तीनों से पवित्र ही है तो सिद्धि कुछ भी अहित न करके (केवल) वापिस लौट जायेगी । और यदि सिद्धि छोड़ने वाले का पलड़ा प्रतिशत में (तप-वरदान-मर्यादा) एक-दो अथवा तीनों में कम है भुक्त भोगी की प्रतिशत से तो उसकी छोड़ी हुई सिद्धि उसी पर उतना ही मात्रा में अहित कर प्रभाव डालेगी । और यदि सिद्ध (महंत इत्यादि) तीनों से रहित हो चुका है अधिक मात्रा में तो यह उसी का (केवल) पूर्ण तौर पर नाश करके ही अदृश्य होगी ! सिद्धि शब्द का ही

केवल विकृत स्वरूप है । और बिना पुरुषार्थ (तप-वरदान-मर्यादा) किसी को भी प्राप्त नहीं होती । रास्ता है एक ही (तप-वरदान-मर्यादा) चाहे तो इस विकृत स्वरूप में जीव अटक जाये (यह भी खेल का एक विशेष अंग ही है) अथवा इस पर नजर ही न डाले और आगे बढ़ जाये जब तक उसे शब्द के निर्मल स्वरूप की प्राप्ति न हो । इस से स्पष्ट होता है कि सिद्धि परमार्थ में एक बहुत बड़ा "विघ्न" ही है । पर इसका स्वाद इतना मधुर है कि अच्छे-2 ऋषिगण भी इससे मोहित हो इसके स्वाद में ही सदा के लिये डूब गये फिर हम जैसे (तप-वरदान-मर्यादा) रहित गंदगी के कीड़ों की गिनती किस श्रेणी में की जा सकती है ! "बिसटा के कीड़े बिसटा कमावहि, फिरि बिसटा माहि पंचावणिआ ।" अतः सभी प्रकार के विघ्नों (लोक-परलोक (दैविक) से संबंधित समस्याओं का "रक्षित उपाय" भी इन (तप-वरदान तथा मर्यादा) तीन ही लफजों में तलाश करना ही केवल रूचिकर सिद्ध होगा । "जरा मरा ताप सिरति साप सभ हरि कै वसि है । कोई लागि न सकै बिन हरि का लाइआ ।" (4-168) अतः केवल "मर्यादित" जीवन ही केवल इंसान बनने की श्रेणी मात्र है शेष तो दो पैर का जानवर एक पूँछ की ही केवल कमी है शक्ल केवल बेशक इन्सान से मिलती है, पर है पूरा जानवर ही । (स्वामी जी) निष्कपट भाव से निरन्तर केवल उस "एक" (ईश) का शौक़ रखने वाला जीव

ही पूर्ण तौर पर रक्षित कहलाने का दावा कर सकता है शेष तो सिर्फ प्रलाप मात्र ही है और प्रलाप में सुख की तलाश केवल मृग मरीचिका ही साबित होगी। यही "मर्यादित जीवन" मनुष्य जन्म में मनुष्य होने का आधार तथा सार है। प्रहलाद भक्त पर जब गुरूपुत्रों ने अपने ब्रहम तेज के बल पर यज्ञ से "कृत्या" (सिद्धि की ही रूप) उत्पन्न करके संकल्प किया कि प्रहलाद नष्ट हो जाये। तब सिद्धि, भक्त प्रहलाद का कुछ भी अहित न कर सकी और लौट कर घर गुरू पुत्रों (उत्पन्न कर छोड़ने वाले) का ही पूर्ण तौर पर नाश कर अदृश्य हुई। यह उपाय भक्त प्रहलाद को नष्ट करने का केवल आखिरी तरीका था। (इसमें तो छोड़ने वाले का जोखिम सदा बना ही रहता है)। इससे इसी नियम का पूर्ण अचूक उपाय है और पवित्रता का ही दूसरा नाम "रहत मर्यादा" है। "मर्यादित" रहित जीवन केवल पशुवृत्ति ही है। जितना प्रचार रंग-तमाशे से परहेज करेंगे उतना ही केवल लाभान्वित होंगे। (मांस-मद-रंग रोगन आदि तमाशे से हर हाल में ही दूर रहें)। अधिक समर्था है तो स्वार्थ (कामना) रहित हो जरूरतमंदों में तकसीम करें। हम एक गरीबी में ही केवल अमीर देश के नुमाइदें मात्र हैं। सच्ची और पूर्ण सुरक्षा केवल "गुरू" (शब्द केवल रागमई प्रकाशित आवाज) "मेरे साथ (संग) सदा है नाले। सिमर-2 तिस सदा समाले।" भावों में चरितार्थ माँ-पिता ही केवल जीव

को यह उत्तम "दान" देने में सक्षम हो सकने का ख्वाब देख सकते हैं ।

ये विलेन द्वारा निर्देशित तथा सुरक्षित सूक्ष्म दैवी जूनें इस मनुष्य शरीर के वापस लेने का हर संम्भव प्रयास केवल कर्म का ही अनुसरण करते हुऐ निरन्तर 10-12 साल तक करती रहती हैं । जीव प्रत्येक के अनन्त जन्मों के अनन्त ही पाप हैं इसी कमजोर पहलू का यह दूसरा खिलाड़ी भरपूर फायदा उठाता है और ईश केवल इस रोचक बन गये तमाशे को केवल खामोशी से देखता और विगसता है । आत्मा में कोई भी एक तिल मात्र भी कमी अथवा बढ़ोतरी नहीं कर सकता । 12 सूरज की समर्थता इसमें हर समय विद्यमान रहती है और यह सारा तमाशा एक सुपने की तरह निरन्तर चलता ही रहता है । सुपने के दुख का क्या ईलाज है केवल एक ही, सुपने से जाग जाना मात्र केवल बस यही साधारण सा उपाय भी अरबों में कोई एक विरला ही कर पाता है वो भी केवल उस "एक" की ही कृपा मात्र से सिर्फ । वर्ना यह रोने-पीटने वाला सुपना तो अनन्त काल से चल ही रहा है और आगे भी चिन्ता मत करिये चलता ही रहेगा । आपके पेट में यदि दर्द उठ रहा है तो केवल आप उठने मात्र का ही पुरुषार्थ उसी "एक" का सहारा ले करके करिये । याद रखिये इसमें कपट अथवा चतुराई के लिये कोई भी कोना नहीं है सावधान रहना हैं

तो केवल इन्हीं दोनों से अर्थात "कपट तथा महंतों (दलाल) से।" शेष फिर आप का तो कोई विषय ही नहीं हैं। अर्थात सब कुछ उसी एक ने ही केवल करना है निश्चित रूप से, सब कुछ हो चुका है केवल प्रत्यक्ष होना बाकी है वो भी जैसे-2 समय बीतेगा सामने सजा करके आपके धर दिया जायेगा यकीनी तौर पर आवश्यकतानुसार !

"सतनाम"(केवल प्रकाश या रागमई शब्द अथवा ईश्वर) सभी मंत्रों का "गुरूमन्त्र" है। यही केवल मनुष्य जन्म का आधार तथा सार है। विद्याहीन मानव के लिये इसी गुरूमंत्र का जप और ध्यान ही केवल चल रहे घोर समय का सभी तपों का तप अथवा "सार" है। यह "सतनाम" किसी मत-धर्म विशेष से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखता। कृप्या किसी भी भ्रम में न आयें। इस लफज में नाम (ईश) को ही केवल सत कहा गया है। शेष सभी रचना झूठा पसारा मात्र ही है। नाम केवल प्रकाश या शब्द केवल ईश्वर को ही कहा गया है। किसी विशेष लफज आदि की कोई भी कल्पना दूर-2 तक भी दृश्टिगोचर ही नहीं है। शेष सब मास्टर घसीटा राम जी की चालें अथवा पसारा मात्र ही हैं। "सतनाम" निज "औषधि" सतिगुरू देई बताये। औषधि खाये अरू "पथ" रहे ताकी बेदन जाये।

<u>(मूलमंत्र)</u>

" एक ओ अंकार-सतिनाम-करता पुरख-निरभउ-
निरवैर-अकाल मूरत-अजून सैभं-गुर प्रसाद ।। "